नदी फिर नहीं बोली

(राजस्थान के सृजनशील शिक्षक कवियों का कविता संकलन)

नदी फिर नहीं बोली

सम्पादन
विजेन्द्र

आदर्श प्रकाशन मन्दिर,
बीकानेर (राज०)

प्रकाशक :
आदर्श प्रकाशन मंदिर
दाऊजी मंदिर, बीकानेर-334005
आवरण : अनन्त कुशवाहा
मूल्य : बीस रुपये पच्चीस पैसे मात्र
संस्करण : प्रथम, 5 सितम्बर, 1991
मुद्रक : एस० एन० प्रिन्टर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

NADI PHIR NAHIN BOLI

Edited by : Vijendra -- Price : Rs : 20.25

आमुख

शिक्षा और साहित्य दोनों का प्रयोजन है—संस्कार देना, साथ लेकर चलना, परिवेश से जोड़ना, व्यक्तित्व को उच्च धरातल प्रदान करना एवम् लोकहित की दृष्टि पैदा करना। सर्जनहार (सृजक) की भूमिका हमारे यहाँ 'ब्रह्मा' के समकक्ष मानी गई है। सृष्टि-रचना का जो कार्य अद्भुत कल्पनाशीलता एवं रचनात्मक कौशल के साथ ब्रह्मा के हाथों सम्पन्न होता है, ठीक वैसा ही रचनाशीलता का काम कवि और साहित्यकार के हाथों सम्पादित होता है। रचनाकार भी मनीषी है, प्रतिपल नूतन उद्भावनाओं के द्वारा जीवन का पुनर्सृजन करता है और लोक-मंगल की कल्याणकारी दृष्टि से अपनी रचनाओं को सार्वकालिक महत्व प्रदान करता है।

खुशी की बात है कि राज्य के शिक्षक शैक्षिक दृष्टि-सम्पन्न भी हैं और साहित्यकार की चेतना से अनुप्राणित भी हैं। वे महज विद्यालयों के ही शिक्षक नहीं, समाज के हर्ष-विषाद, रीति-रस्म, आस्था-विश्वास, हर्ष-उल्लास को रूपायित करने तथा युगानुरूप जीवनी-दृष्टि प्रदान करने के नाते पूरे समाज के शिक्षक का दायित्व वहन करते हैं। इनकी रचनाओं में पूरा समाज अपना रूप-रंग निरखता है, दर्शन और चिन्तन में अपनी जमीन की गंध तलाशता है, यथार्थ की खुरदरी दीवारों को छूता है अथवा लोकोत्तर भावभूमि से स्वयं को संस्कारित करता है।

शिक्षकों की रचनात्मकता को दिशा देने का हमारा यह प्रयास शिक्षा विभाग की ओर से सन् 1967 से शुरू होकर आज तक अबाध जारी है। हर वर्ष प्रदेश के कवि, कहानीकार, निबन्धकार शिक्षक अपनी ताजातरीन रचनाएँ भेजते हैं, जिन्हें 'शिक्षक दिवस प्रकाशन योजना' के द्वारा प्रकाशित किया जाता है और शिक्षकों को प्रकाशनों द्वारा विज्ञापित होने एवम् प्रकाश में आने का अवसर मिलता है। पूरे देश में कदाचित राजस्थान ही ऐसा राज्य है जहां शिक्षकों की साहित्यिक प्रतिभा को इस रूप में प्रकाशित किया जाता है। इस योजना का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि आज हिन्दी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में राजस्थान के शिक्षक-साहित्यकार आदर के साथ स्थान पाते हैं। उनकी रचनाएँ उच्च स्तरीय हैं तथा उनमें जीवन का स्पंदन है। वे साहित्य की अनेक विधाओं में लिखते हैं और साहित्य में कोई स्थान बनाने के लिए रचनात्मक संघर्ष में संलग्न हैं।

इस वर्ष भी प्रदेश के शिक्षक-साहित्कारों की छः पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। इनमें से कविता, कहानी, गद्य-विविधा, बाल साहित्य और राजस्थानी विविधा

के अलावा शिक्षा सम्बन्धी चिन्तनपरक लेखों का भी एक संग्रह है। इन्हें सम्पादित करने के लिए हमने राज्य एवम् देश के यशस्वी साहित्यकार, कवि, कथाकार, निबन्धकार, बाल-साहित्य लेखक और शिक्षाविद से अनुरोध किया था और मुझे प्रसन्नता है कि इन्होंने अपने सम्पादन-कौशल से इन संकलनों को स्तर प्रदान किया है।

इस वर्ष प्रकाशित होने वाली छः पुस्तकें ये हैं :—

1 शिक्षा की कहानी शिक्षकों की जबानी	(शिक्षा साहित्य)	सं० श्यामलाल कौशिक
2 रंग और रेखाएँ	(कहानी संकलन)	सं० से. रा. यात्री
3 मौन तोड़ते शब्द	(हिन्दी विविधा)	सं० महावीर दाधीच
4 रंग अर सौरम	(राजस्थानी विविधा)	सं० रघुराजसिंह हाडा
5 नदी फिर नहीं बोली	(कविता संकलन)	सं० विजेन्द्र
6 मरुथल के फूल	(बाल साहित्य)	सं० दामोदर अग्रवाल

इन्हें मिलाकर अब तक 'शिक्षक दिवस प्रकाशन योजना' के तहत 123 संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। मैं चाहूंगा कि इस वर्ष संकलनों पर शिक्षकों और साहित्यकारों के बीच स्थान-स्थान पर गोष्ठियाँ और सार्थक संवाद हों। इससे रचनाओं का सही आकलन होगा और विषयवस्तु की उद्भावना, रचना की बुनावट, भाषायी लालित्य, शिल्प की नूतनता और उसके निर्वहन सम्बन्धी अनेक स्तरों पर एक तटस्थ दृष्टि मिल सकेगी।

इन संकलनों के लिए रचनाएँ भेजने वाले सभी रचनाकार-शिक्षकों को मैं बधाई देना चाहता हूँ कि उन्होंने स्वयं को सृजन के सार्थक श्रम से जोड़ने का साहस दिखाया है, जो शत प्रतिशत शैक्षिक कर्म है। यह बात अलग है कि उनमें से कुछ रचनाओं को स्थान नहीं मिल पाया। पर वे न हिम्मत हारें, न लेखन के मार्ग से विरत हों। धैर्य को पाथेय बनाकर अपने साहित्य-सृजन को निरन्तर जारी रखेंगे तो मुझे उम्मीद है, अगले वर्ष उनकी अनेक विधाओं की रचनाएँ संकलनों में स्थान पा सकेंगी।

इन संकलनों के अतिथि सम्पादकों का मैं आभारी हूँ कि उन्होंने हमारे अनुरोध को स्वीकार करके सीमित समयावधि में संकलन तैयार करने में हमें सहयोग प्रदान किया। प्रकाशकों के योगदान के लिए भी मैं उन्हें बधाई देता हूँ तथा भविष्य में भी ऐसे ही सहयोग की कामना करता हूँ।

दामोदर शर्मा
निदेशक,
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा
राजस्थान, बीकानेर

शिक्षक दिवस, 1991

भूमिका

कविता की बात

कविता मुझे जीवन, प्रकृति और संसार से कभी विमुख नहीं होने देती। जो जैसा है वैसा न रहे, उसमें बेहतर हो, अधिक सुन्दर और अर्थवान। इसी बेचैनी ने मुझे कभी चैन से नहीं जीने दिया। अपने मन की बात दूसरों से कह सकूं, उसके लिए भाषा खोजी। अपने आसपास की अनाम वस्तुओं को सार्थक नाम देने के लिए शब्द रचे। मैंने हर बार चाहा, जो शब्द मैं रखूं उनमें जादू जैसा असर हो। वह सुनने वाले को अरुचिकर होकर भी आत्मीय और विश्वसनीय लगे। वह उसे जीवन और प्रकृति के विषय में अधिक गहराई और समझदारी से सोचने को प्रेरित करे। जिस भूमि पर वह खड़ा है, वहां स्थिर न रहे। वह अपनी निजी सीमाओं को छोड़, बड़े संसार से जुड़े। उसका मन बड़ा हो और दृष्टि पैनी। कविता इसी क्रिया-व्यापार की एक सांस्कृतिक कड़ी है।

मैं प्रकृति के अटल नियमों को नहीं बदल सकता। पर अपनी मौलिक और अलग से सृष्टि करने के लिए प्रकृति में हस्तक्षेप करूंगा। हर रचना एक ऐसा ही सार्थक हस्तक्षेप है। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा है 'तमारोहति कवयो विपश्चिता'। यहां कवि-कर्म की व्याख्या से कवि के प्रयोजन को भी व्यक्त किया गया है। हम सब कवि अपने समय को वेधने की इच्छा से क्रियाशील हैं। दिक्काल का साक्षात् कर उसे वेधना। उसमें अभीप्सित अर्थ योजना। उसमें मनुष्य की संघर्षधर्मी जिजीविषा मूर्त करना। उसकी अस्मिता की अलग से पहचान कराना। कहना न होगा, हम जिस समय में जी रहे हैं वह अत्यन्त क्रूर और कविता-विरोधी है। हमारी वर्तमान उपभोगतावादी, समाज-व्यवस्था रचनाशीलता को निर्मूल करने को तुली है। हमारी संवेदना पर हर क्षण व्यावसायिक पत्रकारिता, जनसंचार के माध्यम और समूचा प्रचारतंत्र आक्रमण कर रहे हैं। कई बार तो हमें कविता की सार्थकता ही संदिग्ध लगने लगती है। इस कविता का क्या हो? आज कविता अपरिहार्य क्यों हो? इस प्रकार की आशंकाएं आज बहुत स्वाभाविक हैं।

जब आदमी का अस्तित्व ही संकट में हो तो कविता की चिन्ता क्यों? पर फिर भी कविता जीवित है। और जब मैं इस संग्रह के लिए कविताएं चुन रहा हूं तो लगता है, जैसे इस क्रूर और कविता-विरोधी समय में कविता अधिक आवश्यक व अर्थवान हो उठी है। उसकी आवश्यकता आज जैसे पहले से भी अधिक है। हम इस क्रूर समय में अपने मानवीय राग को जैसे पुनः पा लेने के लिए बेचैन हैं। यह आकस्मिक नहीं कि कला वर्मा, नमोनाथ अवस्थी, और प्रमिला शर्मा आदि की कविताओं में सहज मानवीय रागात्मकता व्यक्त हुई है। यहां हमारे परस्पर मानवीय सम्बन्धों की आत्मीय उष्मा के निर्व्याज और विरल चित्र हैं—प्रकृति के सादृश्यमूलक बिम्ब। जीवन में आज जो सबसे ज्यादा अभीप्सित और मूल्यवान है, वही जैसे हमसे छीना जा रहा हो। वह कहीं नहीं तो इन कविताओं में तो सुरक्षित है। कविता में यही समय-सापेक्ष जीवन की चरितार्थता है, जो और कहीं संभव नहीं। इन कविताओं को पढ़कर लगेगा कि बावजूद इतनी यातना और क्रूरता के, न तो जीवन नि:शेष हुआ है, न ही निरर्थक। यह बात किंचित् सांकेतिकता से कहेंगी कमर मेवाड़ी, अरविंद तिवारी और निशांत की कविताएं।

कविता न केवल मुझे अपने आभ्यंतर से गहरे परिचित कराती है वरन् वह मुझे अपने परिवेश से भी उसी तरह जोड़ती है। उसमें आत्मीय परिचय कराती है, जिससे मैं अपने को पहचान कर भी अपनी सीमाओं में उलझा न रह जाऊं। राधेश्याम अटल की 'बनास नदी' एक ऐसी ही कविता है। बासुदेव चतुर्वेदी ने 'तुलसी चौरे को देख' में हमें लोकजीवन की परम्परा से जोड़ा है और समकालीनता के नए अर्थ खोजे हैं। 'पक रही है सरसों' में अनिल गंगल किसान जीवन का खारापन व्यक्त कर उसके हर्षोल्लास को भी बताते हैं। भागीरथ भार्गव और भगवतीलाल व्यास की कविताएं आज नष्ट और विघटित होने हमारे व्यक्तित्व के त्रास को व्यक्त कर उस दुष्प्रवृत्ति का बड़ी सांकेतिकता से प्रतिरोध भी करती हैं। कविता इसी सूक्ष्म प्रक्रिया से जीवन, प्रकृति और संसार को रूपांतरित कर उसे और अधिक सजीव, सुन्दर और अर्थवान बनाती है।

यहां हर कवि का तेवर अलग है। लगता है, हरेक अपनी तरह से दिक्काल को झेल उसे रचने में लगा है। इसीलिए कहीं राग-विराग है, कहीं संघर्ष की चेष्टाएं, और कहीं व्यंग्य की गहरी चोट। जीवन, प्रकृति और संसार के इतने विविध रूपाकार, रंग, आकृतियां, भंगिमाएं और बिम्ब अन्यत्र कहां सुरक्षित हैं? हां, यह सब तो पहले से ही संसार में है। पर हम सब उसकी ओर इतने सजग कहां हैं? उसे बनते-बिगड़ते इतनी तीव्रता से कहां अनुभव कर पाते हैं? इस सबका एक साथ मार्मिक और असरदार ढंग से अनुभव करा उसके प्रति हमें सचेत कर देने का कार्य तो कविता ही करती है। इसीलिए एक बेहतर कविता हमें विश्व-जीवन-दृष्टि देकर अधिक समृद्ध बनाती है, संवेदनशील भी। इसी से मैंने

कहा—वह आज भी अपरिहार्य है। उसका न कोई विकल्प है और न स्थानापन्न।

एक बेहतर कविता समकालीन होकर भी हमें अपने अतीत की सार्थकता के प्रति सचेत करती है और भविष्य के प्रति उन्मुख। कविता इसी तरह दिक्काल की छाप ले उसका अतिक्रमण करती है। कई बार समकालीनता की चमक-दमक में हम अपने सार्थक अतीत को भी विस्मृत करते हैं। कहना न होगा कि समकालीनता से वे ही आतंकित हैं, जो अतीत की गहरी और खरी परख करने मे समर्थ नही। और अतीत से मोहाविष्ट वही हैं जो समकालीनता को केवल सतह पर समझते और जीते हैं। भविष्योन्मुखी होना तभी सार्थक है, जब हमने अतीत और वर्तमान को अपने रक्त मे रचा-पचा लिया हो। इसी त्रिकाल-भेदन को ऋषि ने कहा: 'तमारोहति कवयो विपश्चिता'।

अमानवीकरण की प्रक्रिया आज इतनी प्रखर है कि हम अपनी पहचान ही खो रहे हैं। हम अपनी जड़ों से अलग हो चुके हैं। सब कुछ जैसे अमूर्त होता जा रहा है। ऐसी अमूर्तता की स्थिति मे जीवन परास्त लगता है, निस्सार भी। कविता से *मनुष्य का इस तरह लुप्त होते जाना गहरे सांस्कृतिक सकट का लक्षण है।* मनुष्य-धर्मी कविताएं विरल होती जा रही हैं। ऐसी स्थिति मे यह प्रासंगिक है कि हम उन नायकों की तलाश करें जो सारी प्रतिकूलताओं के बावजूद जीवन के प्रति आस्थित हैं और नए मूल्य सिरजने मे संलग्न। ऐसे जीवन-धर्मी चरित्रों के प्रयत्न हमे मणि बावरा 'सोमा का भूगोल', रमेश भारद्वाज 'पनिहारिन', भोगीलाल पाटीदार 'राधा का संसार' आदि मे मिल सकते हैं। भले ही ये प्रयत्न कला और शिल्प की दृष्टि से उतने परिपक्व न हों। हमे लगेगा, जीवन के सजल स्रोत सूखे नहीं हैं। यह वही जीवंत काव्यधारा है, जो हमे अपनी अत्यत समृद्ध तथा बहु-आयामी जातीय काव्य-परंपरा से जोड़ती है। इन चरित्रों मे न केवल समकालीनता की नसें उभरी है वरन् वहां लोकजीवन की मर्म-छवियां भी द्योतित है। ऐसे ही जीवन आस्था के स्रोत हमे दीपचंद सुथार, जितेंद्रशंकर बजाड़, अशोककुमार दवे, उषा किरण जैन आदि की कविताओं में सहज आकर्षित करते हैं।

कविता भले ही हमारी तात्कालिक भौतिक आवश्यकता को पूरा न करे, पर वह हमारे मन को हर बार नए सिरे से रचती है। उससे हमारा सौंदर्यबोध निखरता है और दृष्टि पैनी होती है। आज की कविता की अनुपम उपलब्धि है, एक नए सौंदर्यबोध की रचना। आज की कविता के केंद्र मे सामान्य संघर्ष-धर्मी मनुष्य है। हमने सामान्य को चुना है। जहां जीवन की सक्रियता है, गति है, सामाजिक अंतर्विरोध हैं। आज हम विषय चुनने में अधिक सावधान हैं। कविता में जितना बड़ा विविध और बहुआयामी संसार व्यक्त करेंगे, कविता उतनी ही समग्र होगी। जीवन की समग्रता ही कविता को अर्थवान् बनाती है। हम उससे उतनी

तो इस मार्ग मे आने वाले जोखिम का अनुमान भी कर लिया होगा।

कविता और कवि को सामाजिक यथार्थ से कभी निजात नही। मैं यदि उल्लास और गहरी त्रासदी के गीत भी गाऊं तो भी उसमें मेरे समय की अनुगूंज होगी। परंपरा और सामान्य मानवीय व्यवहार से मैंने जो भाषा अर्जित की है वह और अधिक व्यजनामूलक और जीवत हो, जिसमे मैं अपने समय की जटिलताओ को कला-कौशल और उन्नत शिल्प-विधान के माध्यम से व्यक्त कर सकू। इसी यत्न से आज एक नई काव्य भाषा का विकास संभव है। हर कवि अपना मुहावरा रचेगा। उसका अनुकरण न तो संभव है और न प्रेय। एक सजीव और समृद्ध भाषा रोजमर्रा के क्रियाशील जीवन-व्यवहार से अर्जित और सपुष्ट होती है।

कविता और कवि की घोर उपेक्षा के इस नृशस समय मे हम सब ने कविता को विकसित करने का संकल्प लिया है। यह संग्रह उसी रचनात्मक सकल्प की मूर्त्त अभिव्यक्ति है। मुझे खेद है सीमित स्थान के कारण चाह कर भी, यहां अनेक कविताएं संकलित नही कर पा रहा। पर उन अनेक असंकलित कवियो की छाप मेरे मन पर है।

कविता मेरे लिए जीवन की लौ है। उसे प्रज्वलित करना आसान है पर उसे बुझने न देना अत्यंत कठिन। हम सब ने मिलकर यह चुनौती स्वीकार की है कि जीवन की इस लौ को बुझने न देंगे। यही हमारा सबसे काम्य है, जिसे ऋषि ने इस तरह कहा है :

अग्निर्जागार तमृच. काम्यते।

आचार्य, राजकीय महाविद्यालय
नोहर—335523

अनुक्रम

कला वर्मा 15 खिले कोई फूल
अनिल गगल 16 पक रही सरसों
भगवती लाल व्यास 18 गुलदस्ता
भागीरथ भार्गव 20 स्वर की गूंज
कमर मेवाड़ी 21 यादों के नश्तर
प्रमिला शर्मा 24 आओ हवाओ
मनमोहन झा 25 ज्योति शिशु
भगवती लाल शर्मा 26 रोने पर हसना
निशात 27 मैं और दुनिया
28 मैं, मौसम और लोग
वासुदेव चतुर्वेदी 30 तुलसी चौरे को देख
राधेश्याम अटल 31 बनास नदी : तीन चित्र
मायामृग 33 नदी फिर नहीं बोली
मणि बावरा 34 सोमा का भूगोल
नमोनाथ अवस्थी 36 मेरे लिए तुम्हारा होना
दीपचद सुथार 38 खिला सकूं वसंत
जाकिर हुसैन 39 तो बात होती है
अलका भटनागर 40 वृक्ष
अरविंद तिवारी 41 पाए गए जहाँ खून के निशान
बजरंगलाल जेठू 42 कवि की पीड़ा
रमेश भारद्वाज 43 पनिहारिन
जितेंद्रशंकर बजाड़ 45 नियति है धारा के विरुद्ध होना
अशोककुमार दवे 47 खंड-खंड बादल
प्रकाश तातेड़ 48 लौट गए बादल
दीनदयाल शर्मा 49 अतीत का भविष्य
नदलाल परसरामाणी 50 खोज
बाबूसिंह जैन 51 तस्वीर बदल कर
जगदीश सुदामा 52 जिंदगी की पहचान
उषा पालीवाल 53 अवशेष
अमृतसिंह पवार 54 गुमराह मत होना
रविदत्त पालीवाल 55 सफेद दीवार
भोगीलाल पाटीदार 57 राधा का संसार

हरेंद्रकुमार त्यागी 59 व्यथा प्रस्तर खंड की
मुख्तार टोंकी 61 पत्थर की आवाज
अरनी राबर्ट्स 63 शून्य
उषा किरण जैन 65 अंकुराई इच्छाएँ
शिशुपाल सिंह नारसरा 66 फासला
रजनी कुलश्रेष्ठ 69 पतंग
हनुमान दीक्षित 71 एक विशाल जुलूस
कुंदनसिंह सजल 72 कई सूर्य भी नाव तक आए
घनश्याम मुखवाल 73 विरोधी स्वर
माधव नागदा 74 सोने की जंजीरें
जगदीशप्रसाद सैनी 75 खाता बही
अरविंद चूरूवी 76 गजल
पुष्पलता कश्यप 77 बरसात में
जयपालसिंह राठौ 78 जिंदा रहने के लिए
महेंद्र आचार्य 79 आईना
गणेश तारे 80 तुम्हारा खत
योगेंद्र सिंह भाटी योगी 83 खेतों में धन कहाँ गड़ा है
व्रज भूषण भट्ट 87 छोटी मछलियाँ
करणीदान बारहठ 89 क्यों नहीं सूरज उग रहा
रमेशचंद्र पारीक 90 बस्ती में
गिरधरप्रसाद बिस्सा 92 तीन लघु कविताएँ
दिनेशचंद्र श्रीमाल 94 पर जिंदा हैं आज भी
कमर मेवाड़ी 95 अगर तुम न होते
भागीरथ भार्गव 96 सम्पूर्ण इकाई
अशोक कुमार व्यास 97 कथा ने मेरी आँखें खोली
महेन्द्र यादव 99 गुड़हल के फूल
पारसचन्द जैन 101 राजस्थानी गाँव
ऊषा रानी दवे 102 आधुनिक सत्य और मुक्तक
रामेश्वरलाल शर्मा तूफान 103 कदम-कदम
राधेश्याम शर्मा 104 शाश्वत सत्य
गौरीशंकर आर्य 105 चौराहे की लाठी
भवरलाल प्रभाकर 106 अभिलाषा
राधेश्याम सरावगी 107 शहर पर कहर
इसहाक आलम सिरोही 10९ घायल बसन्त की हवा
भरतसिंह ओला 'भरत' 110 दो मुसाफिर

□

खिले कोई फूल

कला वर्मा

बीते पलों का
स्मरण कर
फिर आयी तुम्हारी याद
जिस तरह
ऋतु बीतने पर
खिले कोई फूल

कभी था भ्रम
अब हो गया विश्वास
मिलन का क्षितिज
आ गया इतने पास

आकाश की लालिमा
सुबह का स्वागत करती
अपने हृदय के
उद्गारों के प्रतीक स्वरूप
स्वर्णिम किरणें बिखेर
लिख रही पहाड़ी पर
आज तुम्हारा नाम

☐

पक रही सरसों

अनिल मंगल

(1)

पीलापन फैल रहा है सब तरफ

पहले जड़ें फूटी
फिर कल्ले
फिर हरे को पराजित करते हुए
फैल गया हर तरफ पीलापन

यहीं से ही शुरू होती हैं यात्राएं
यहीं से ही शुरू होती है वास्तविक दुनिया

इस पीलेपन से ही निकल कर
आती है हरियाली
किसान के घर।

(2)

पक रही है सरसों

जैसे पकती है यह देहरी में सरसों
जैसे पकता है कवि के मन में विचार

अपने ही यौवन पर मुग्ध बसंतसेना
भरमाती हुई सिंगार बदल रही है।

(3)

सरसों के दाने
कब घर आएंगे

जिंदगी का कड़ुवापन भाँपने
अभी हरे हैं वे

अभी गुजर रहे हैं
काली ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों से
अभी रच रहे हैं उल्लास अपनी धुरी में
अभी वे कालिख बटोर रहे हैं
अभी उनमें
वर्णमाला का रचा जाना शेष है

सरसों के दाने
जब घर जाएंगे
हवा में झूलते इस घर की नींव में
ढेर-सी खुशियां रोप जाएंगे।

☐

गुलदस्ता

भगवती लाल व्यास

लोग कैसे बना लेते हैं
गुलदस्ता ?
तरह-तरह के फूल
रंग-रंग के आवरण
कैसे बंध जाते हैं
एक बंधन में ?
यह प्रश्न बार-बार
मुझे मथता है ।
मैंने तो जब-जब
गुलदस्ता बनाने की
कोशिश की
फूलों ने इनकार कर दिया था
फुफकार-सी उठी थी पंखुरियाँ
टहनियों ने दिया था
टका सा जवाब—
हम क्यों बंधें
तुम्हारी मरजी की डोर से
कोई किसी को नहीं बांध सकता
जबरदस्ती या जोर से ।
टहनियों की बेरुखी
पंखुरियों का आक्रोश
और फूलों का तमतमाया मिजाज
देखकर खुद-ब-खुद

रुक गए ये मेरे हाथ
और मैंने गुलदस्ता
बनाने का विचार
छोड़ दिया था हमेशा के लिए।

मेरी बैठक मे
अब कोई गुलदस्ता नही है
लोग आते है
और खाली फूलदान की तरफ
सवालिया निगाह डालते हैं
फिर वे मेरी तरफ
देखते है उसी नजर से
फूलदान से मेरे चेहरे तक का सफर
उन नजरो को बना देता है
अधिक क्रूर
अधिक वाचाल।
ये नजरें किसी
टूटी इमारत की ईंटो-सी
बिखर जाती हैं मेरे चारो ओर
मैं निरुपाय होकर
पढ़ता रहता हूं
उन ईंटों पर लिखा
मेरा विगत प्रशस्ति-गीत
और कभी फूलदान के
सूने अधरों पर तैरती
विवशता की एक लबी कविता।

□

स्वर की गूंज

भागीरथ भार्गव

लगता रहा हर बार
मेरे स्वर को आलापता है एक स्वर और
मेरी ध्वनि को रागमय बनाता है कोई
मेरे स्वर की गूंज
अकेली कहां लौटती है
उसमें शामिल होती हैं अनेक अनुगूंज।

धीरे-धीरे वे स्वर, वे ध्वनियां
अपने खोजते अस्तित्व
क्षणिक सुख-आनन्द की तन्मयता में डूबे
किसी प्रेत-योनि से
किसी जादूगर की छड़ी से जन्मे
किसी पुतले के चमत्कारी करतब में
गतिशील होकर एक कौंध के साथ
डूब जाते हैं गहरे पाताल में।

शेष रहता हूं मैं, केवल मैं
जूझता हुआ
अनुभव करता—साक्षात्कार करता हुआ
एक नग्न यथार्थ बोध से
कि मैं ही बजता रहा हूं
एक झुनझुने-सा बार-बार
और सुनता रहा हूं—अपने ही अस्तित्व की रुदन को
एक आह्लादित माधुर्य के साथ।

□

यादों के नश्तर

कमर मेवाड़ी

यह नही कि
जिनके साथ मैंने
हसी-खुशी के दिन गुजारे हो
और जिनकी वजह से
जिन्दगी में
बहारो का साम्राज्य छाया रहा हो
उनसे मिलने का मन नही करता
मिलने का बहुत करता है मन
पर क्या करू
जिन्दगी को अजगरी शिकजे में
ऐसा जकड लिया है
कि अब खुद पर अधिकार नही रहा

निरंतर बनी रहती है
एक दहशत
और सिर पर तनी रहती है
अभावो की नंगी तलवार
अब सुबह
खुशबूदार झोकों की तरह
नही आती रोज
बल्कि एक कर्कश आवाज
कानों के पर्दे फाड़ती हुई
घर के दरवाजों को चीरती

फैक्ट्री के सायरन के साथ
हवा में गुम हो जाती है

किसी के लिए याद
गुलाब के फूलों का गुलदस्ता हो सकती है
और किसी के लिए आबेहयात
पर मेरे लिए याद
न कोई गुलदस्ता है न आबेहयात
बल्कि याद एक नश्तर है
जो दिल के घावों को कुरेद तो सकती है
पर उस पर मरहम नहीं रख सकती

दोस्तो
दिल एक ऐसी जगह है
जहां पर किसी और का प्रवेश वर्जित है
वहां जो पहुंच जाता है
फिर उसका लौटना नामुमकिन है
दिल छुई-मुई का वह पौधा है
जिसे अगर कोई छू ले
तो मुर्झा जाता है
और यहां तो दिल को
इतना मसला-कुचला है
कि उसका अस्तित्व ही समाप्त हो गया

आज अभावों के काले नाग
मेरे चारों ओर डेरा डाले बैठे हैं
और परिवार के सदस्यों की भूख
बीमारी, बेकारी और असमझ
दिन ब दिन बढ़ती चली जा रही है
भरहृषान और भय
समाज की दीवारें कांप रहा है
हर घर, गली और मुहल्ला
आतंक की आगोश में दुबका पड़ा है
ऐसी हालत में,

अब मैं कर ही क्या सकता हूँ
यह नही
कि जिनके साथ मैंने
हसी खुशी के दिन गुजारे हो
और जिनकी वजह से
जिन्दगी मे,
बहारो का साम्राज्य छाया रहा हो
उनसे मिलने का मन नहीं करता
मिलने का बहुत करता है मन
पर क्या करूं
जिन्दगी को एक अजगरी शिकजे ने
ऐसा जड़क लिया है
कि अब खुद पर ही अधिकार नहीं रहा।

□

आओ हवाओ

प्रमिला शर्मा

रेत पर लिख दी है
पानीदार हाथों की अंगुलियों से
एक नई इबारत मैंने

आओ हवाओ
अब इस नदी के तट पर
बगुलों की जमात नहीं है
गुनगुनाने लगी हैं लहरें
जब से मेरे शब्द गीत,
मानसरोवरी मन पर
आ बैठी हंसों की पाँत
खुलने लगे अब
तट बँध नदी के

आओ हवाओ
माँझी को देकर कोई गीत
ठहरी हुई नावों को
हौले-हौले गंतव्य तक ले जाओ।

□

ज्योति शिशु

मनमोहन झा

रोशनी से रोशनी
जल से जल
बादल से बादल/की तरह
जब भी कहीं कोई
आदमी/किसी आदमी से
ठीक आदमी की तरह
एकदम सहज होकर
सम्पूर्ण मिलता है/तब
कुछ यों लगता है/जैसे
घुटन भरे घुप्प अंधेरे में
कहीं कोई नन्हा-सा ज्योति शिशु
पलता है
या कि/निर्गन्ध फूलों भरे/बगीचे में
कोई सुगन्धित फूल खिलता है !

□

तुलसी चौरे को देख

वासुदेव चतुर्वेदी

न जाने कब
आंगन के
तुलसी चौरे के पास
केक्टस उग आए हैं
न जाने कब
लाल गुलाब
महक बिखेरते-बिखेरते
डालियों पर मुरझाए हैं,
मन में जब भी
भक्ति का भाव जागता है
श्रद्धा का शालिग्राम
अपने पास बुलाता है
मैं दौड़ पड़ता हूँ
तभी केक्टस के काँटे
कलेजे में चुभ जाते हैं
सोचता हूँ
पीढ़ियाँ गुजर गई
ऐसा तो कभी नही हुआ
मेरा नानी,
हर शाम
इस तुलसी चौरे पर
दीप जलाया करता है
गुलाब के काँटो की

और भी है
अपने से नीचे के लोगों को
देखने की आदत
मेरी छूट चुकी है
मैं हमेशा ऊँचों की ओर
देखने का आदी हो गया हूँ
यह अच्छा है या बुरा
मैं नहीं जानता
लेकिन मैं यह अवश्य जानता हूँ
मुझे जो अपनी
सामर्थ्य पर विश्वास नहीं रहा है
वह जरूर बुरा है ।

□

मैं, मौसम और लोग

जब मैं मौसम का
हिसाब लगाया करता हूँ
मेरे इर्द-गिर्द के लोग
रोटियों का
हिसाब लगाते हैं,
जब मैं गर्मी-सर्दी को
कम करने की
सोचा करता हूँ
लोग दिहाड़ी पर
निकल चुके होते हैं।

□

तुलसी चौरे को देख

वासुदेव चतुर्वेदी

न जाने कब
आंगन के
तुलसी चौरे के पास
केक्टस उग आए हैं
न जाने कब
लाल गुलाब
महक बिखेरते-बिखेरते
डालियों पर मुरझाए हैं,
मन में जब भी
भक्ति का भाव जागता है
श्रद्धा का शालिग्राम
अपने पास बुलाता है
मैं दौड़ पड़ता हूँ
तभी केक्टस के काँटे
कलेजे में चुभ जाते हैं
सोचता हूँ
पीढ़ियाँ गुजर गईं
ऐसा तो कभी नहीं हुआ
मेरा नाती,
हर शाम
इस तुलसी चौरे पर
दीप जलाया करता है
गुलाब के काँटों की

चुभन सह कर भी
नित्य जल चढ़ाया करता है
कैक्टस को देख
सहमा-सहमा-सा
उदासी पिया करता है
न जाने क्यों
न दिया जलाता है
न जल चढ़ाता है
सन्नाटे को चीर
खामोशी बुनता है
न जाने क्यों
मेरा पड़ौसी
तुलसी चौरे को देख
मेरी पहचान पर
सिर धुनता है
मुझे लगता है
यह तुलसी चौरा,
यह बुझा दीप,
यह मुरझाया गुलाब,
संस्कृति को
एक नया अर्थ देता है
विश्वासों को
मजहब और ईमान के
बिम्बों को
दान देता है।

□

बनास नदी : तीन चित्र

राधेश्याम 'अटल'

(i)

पिताश्री
अरावली की गोद
जब पड़ने लगी छोटी
और उठने लगी असंख्य
मन मे नव-तरंगें
निकल पड़ी 'बनास' यह देखने
कि धरती पर लोग
कही प्यासे तो नहीं हैं !
नही छुई इसने
किसी बड़े घर की देहरी
इसने पोंछे हैं आँसू
गाँव-गाँव जाकर
सिसकते खपरैल
और सुबकते छप्परो के ।

(ii)

यह भी नहीं थी कोई
किसी बड़े घर की बेटी
जानती थी यह
कि भूख का झाड़
उगा हो जिसके पेट मे
भर जाता है काँटो से उसका कण्ठ

तब चीख भी नहीं सकता आदमी
सिर्फ बहाता रहता है
छिप-छिपकर आँसू
और पीता रहता है चुपचाप।
इसने देखा था
धोबी कीर-कुम्हारों को
इसकी शयन-नगीची बालू में
तलाशते हुए रोटी
रोम-रोम में उगा लिए इसने
खरबूजे, तरबूज, टमाटर और ककड़ी;
कोटि-कोटि उगे हुए
देह पर सूरज
देख रहे हैं निकट से
ढह कर खड़े होते आदमी को
अब बह रही है बनास
धरती के अतिरिक्त
आदमी के अन्दर भी।

(iii)

बनास !
अब मुस्करा रही है
देख रही है करीब के गाँव
कि लोगों के पेट
अब पीठ से अलग होने लगे हैं।
ले जाने लगे हैं ट्रकों में भरकर
उसकी बालू रेत
बहने लगी है बनास
अब घर-घर में जाकर,
गर्व से फूल गई छाती
अरावली की आज
बड़ा नाज है उसे
कि वह बनास का पिता है।

☐

नदी फिर नहीं बोली !

मायामृग

नदी पहली बार तब बोली थी
जब तुम्हारी तीखी नाव
उसका वक्ष चीरकर
सुदूर बढ़ती गई थी।
लहरो ने उठ-उठ,
विरोध दर्शाया—पर
तुम्हारे मजबूत हाथो मे थमे
चप्पुओं ने विरोध नही माना।
तब तुमने लौह का, विशाल
दैत्य-सा घरघराता जहाज
उसकी छाती पर उतार दिया।
तुमने खूब रौंदा इसकी देह को।
लहरो के हाथ दुहाई मे उठे
तुमने नही सुना !
फिर तुमने कितने ही युद्धपोत, जंगी बेड़े
कितने ही—जाने कितने ही
इसके अंग-अग में बसा
इसकी देहयष्टि को अखाड़ा बना दिया
और क्रूर होकर—पूछा
बोलो क्या कहती हो ?
नदी नही बोली
नदी फिर नही बोली
नदी फिर कभी नही बोली !

□

सोमा का भूगोल

मणि बावरा

उस दिन
जब सारा शहर हो गया बेकाबू
फूटता छितराता
गुस्से में आकर बैठ गया सोमा
साम्प्रदायिक सरगर्मियों का शिकार सोमा;
सोमा हम्माल
गरीब
गंवार
मैला कुचैला
चिथड़ा-चिथड़ा
घने बीहड़ जैसे बाल
सोमा हम्माल
स्वार्थ के गहरे अँधेरों ने
रोशनी जिसकी छीन ली है
और ताक़त चीख़ने की भी
लील ली है
ता-ज़िन्दगी
नमक ढोया
नमक खाया
नमक बजाया
सबके लिए
समाज के लिए
देश के लिए

और अपनी नंगी पीठ को
तपा-तपा
ताम्र पात्र बनाया
कि लिखे
कोई लिखे
कि सोमा नहीं जानता
कि
सोमनाथ क्या है ?
और क्या है
कोई मस्जिद
कहाँ है कोई मन्दिर ?
सोमा सिर्फ जानता है
सिर्फ !
पेट के भूगोल को
जो इतिहास बनाता है ।

☐

मेरे लिए तुम्हारा होना

नमोनाथ अवस्थी

तुम जरा नजदीक आओ
झरोखों में रखे
फूलदान
मुस्करा सकें।

तुम्हारे झरते हुए रूप की चांदनी में
एक झील होना चाहता हूँ—मैं।

एक प्यास है जो मेरे कंधों पर चढ़कर अनवरत
पुकारती रहती है
आषाढ़ के पहले बादल के लिए।

ये गीले पंखों वाले पखेरू तुम्हें जानते हैं
तभी तो तुम्हारा जिक्र होते ही
खेतों की मचान झमझमा जाती है,
हवा गदराने लगती है सिंदूर में
और सारा का सारा वातावरण
कच्चे आम की कैरी की तरह
टीस उठता है—टपक कर।

मैं जानता हूँ—
तुम्हारा होना मेरे लिए एक चारपाई नहीं है
बल्कि एक फूलदान है

और फूलदान वह
जिसमे
सुगन्ध अपने पैरों मे पखावज बाँध कर
सारे मौसम की किताब मे से
हमारे तुम्हारे लिए
वे संवाद छाँटकर
लाती है
जिसे
या तो केवल मैं समझ सकता हूँ
या केवल तुम !

□

खिला सकूँ वसन्त

दीपचन्द्र तुषार

जगधार
जो चाहो/माँग लो
सर्वस्व देने को तैयार हूँ
सिर्फ एक अभिलाषा है
तुम मुझे/अपना
अनन्य सखा बना
सरलता
प्रदान कर दो
ताकि
सूखती फसलों को
समय पर/नीर दे सकूँ
और
बहते आँसुओं को पोंछ
अन्तस में
वसन्त खिला सकूँ !

□

तो बात होती है

जाकिर हुसैन

तकदीर अपनी खुद बनाओ तो बात होती है।
गैर के गमों को अपनाओ तो बात होती है॥

कश्तियाँ डूब रही हैं किनारों को तरस के।
डूबे हुओं को बचाओ तो बात होती है॥

इस नादान दुनिया में कोई कहाँ भटक जाए।
भटके हुओं को राह दिखाओ तो बात होती है॥

चार दिन की जिन्दगी में, चालीस दिन का गम।
वक्त के साँचे में ढल जाओ तो बात होती है॥

पल भर चलते संग, जुदा हो जाते हैं सारे।
मंजिल पे खुद पहुंच जाओ तो बात होती है॥

□

वृक्ष

अलका भटनागर

खड़े हो गए वे,
अपनी जड़ों के सहारे,
धरती पर खड़े,
    आसमान को छूने
वे, फल-फूल गए···
और, अपनी ही जड़ों को भूल गए।

□

पाये गये जहाँ खून के निशान

अरविन्द तिवारी

पाये गये जहाँ खून के निशान
शहर में वही है निज़ाम का मकान

हैं इधर हादसे उधर जश्ने रात
दोनों के बीच है एक आदमी गुमनाम

जो सीढ़ियाँ चढ़े वे पिछड़े लोग थे
लिफ्ट चढ़ने वाले सब हो गये महान

ताउम्र हम सेवा करेंगे घोषणा रही
मौकापरस्त थे सभी, खोलने लगे दुकान

राष्ट्रद्रोह में जो शरीके जुर्म थे
कौम के लिए अब गाते हैं समूह गान

संगीन की नोक पर वे छीन ले गये
और हम कह रहे कि कर दिया है दान

ज़मीर के व्यापार का अरविन्द दौर है
घिसे पिटे चुटकुलों सा हो गया ईमान

□

कवि की पीड़ा

बजरंगलाल जेठू

अतीत के आखरी पन्ने को
सहेजते हुए
स्वर्णिम भविष्य की
कल्पना में खोता हूँ
उदास होता हूँ।
सड़क चलता भी
समय के बोझ से दबते हुए
सुनता नहीं, सिर्फ 'हाँ' या 'हूँ'
की आवाज में बात करता
सामने की इमारत को
शून्य-सा निहारता हूँ
उदास होता हूँ।
सृजन में स्वयं क्या कम हूँ
नाहक जीवन छन्द से क्या कम हूँ
मेरा वजूद शिल्प का
शाश्वत सोता है
कविता पाठ होता है,
मंच पर ही मेरा श्रोता है।
और
सामने नर मुण्ड देख
हताश नहीं होता हूँ
कवि की पीड़ा सहता हूँ
सिर्फ उदास होता हूँ।

☐

पनिहारिन

रमेश भारद्वाज

मलिन दशना
जीर्ण वसना
बुझे नैन
गिरे बैन
छितराये केश खुजलाती
निष्प्राण पग उठाती
तँगे खाती
पपड़ियाये होठों पर
जीभ फिराती आती
शुष्क काष्ठवत् हाथों में
उभरी हड्डी पर
कमर में दबाये
मटका एक
पनिहारिन आती।

मतिराम-बिहारी की
प्रसाद-पंत की
नहीं है यह पनिहारिन
वरन्
संकत सिन्धु की
असल पनिहारिन है।

कामिनी नहीं

मानिनी है
मन की सूनी है
मुस्कुराती नहीं
ऐसा भीतरा हो गयी है
उसकी ममता
खो गयी है।

बार-बार होंठों में
दो घूंट भर जाता है
जब गँदला आता है
खाली कूप गूँजता है
अब छलता बटोही नहीं
कूप ही
पनिहारिन से
मसखरी करता है।

□

नियति है धारा के विरुद्ध होना

जितेन्द्रशंकर बजाड़

तुम चुप क्यों हो/गूगे की तरह
जबकि बोलता है तुम्हारा
पेट, कण्ठ और आखे ?

सुनना/और सुनकर हो जाना मौन
नियति नही है हमारी बदल सकता है
समीकरण हर प्रश्न का/यदि
हम समझें समय के वेग को।

धारा के साथ चलना आसान है/और है टेढ़ी खीर
धारा के विरुद्ध बढ़ना
किन्तु
इससे भी अधिक कठिन है
पहचानना प्रवाह मे
होने वाले परिवर्तन और प्रभाव को, स्थिर
खड़े रहते हुए अपनी जगह पर,
जगह अपनी है/सबकी अपनी-अपनी

मगर
खड़े हैं हम वहाँ पर/किसी लॉज में ठहरे यात्री की तरह
और
चुप हैं जमीन के दिन पर दिन बढ़ते कटाव की बाबत,
जानते हैं हम/जमीन काटते

खण्ड-खण्ड बादल

अशोक कुमार दवे

बादल
खण्ड-खण्ड बादल
कुछ आक्रोश भरे—
तीव्र गति से जा रहे हैं
तो कुछ
डरावना गर्जन लिए।

जाने कितनी
आकृतियों में
मन को लुभाते, भयभीत करते
बड़े-छोटे को अपने में,
समेटते, चले जा रहे हैं बादल।

जाने की भी इनकी अपनी गति
अपनी सीमा है
बस, उस सीमा के बाद
वापस एकरस हो
एक धागे में बँध जाते हैं बादल।

और इतनी भिन्न आकृतियों में भी
दिखाई देती एक-सी परिचित आकृतियाँ
इन बादलों में।

□

लौट गये बादल

प्रकाश राठौड़

हर साल की तरह
बादल आये
मगर बिन बरसे ही
लौट गये बादल,
शायद
आकाश से उन्होंने
देख लिया वह सब कुछ
जो हम नहीं देख पाते
धरती से।
निरन्तर फैलता, रेत का सागर
नंगी पहाड़ियों पर
जंगल की लाश
हरियाली शून्य
खेत व मैदान
प्यासी झीलें, सूखी नदियाँ
ऊँची अट्टालिकाएँ
धुआँ उगलती चिमनियाँ
संवेदनहीन मानव
खून की होलियाँ
निर्वासित नैतिकता, चमकती भौतिकता
और भी, न जाने क्या-क्या
देख लिया बादल ने,
तभी तो लौट गया बिन बरसे ही !

☐

अतीत का भविष्य

दीनदयाल शर्मा

मैं जमीन मे
गहरा गड़ा खूंटा हूँ
मैंने चोटों के दर्द को
महसूसा है
लेकिन भुला दिया है दर्द
मेरे विश्वास ने
जमीन की नमी पाकर
गहरा गई हैं जड़ें
और फूटने लगी हैं
जगह-जगह से कोपलें
मैं खूंटा जरूर हूँ
अब पेड़ भी बनूँगा
और ढेर सारे खूंटों को
जनम दूँगा बार-बार
फिर उनके आगे
अपना अतीत दोहराऊँगा
पाठ पढ़ाऊँगा उन्हें नई नीति का
कि तुम खूंटे की संतान हो
पर गड़ना तुम्हारा काम नहीं
सहारा बनना
किसी गरीब की छत का
नहीं तो शहीद हो जाना
उसका चूल्हा जलाकर तुम।

□

खोज

नन्दलाल परसरामाणी

वह सागर के तट पर बैठा
निहार रहा था
कभी-कभी
आँख की पुतलियाँ
इधर-उधर घुमा रहा था
ललाट पर हाथ रखे
कभी-कभी
दूर, बहुत दूर घूर भी रहा था
मैंने पूछा
"मित्र, बैठे-बैठे क्या ढूंढ रहे हो?"
सागर की विशालता की ओर इंगित कर
उसने उत्तर दिया
"कल दो आँसू गिरे थे यहाँ
आज उन्हें ही खोज रहा हूँ"

□

तस्वीर बदल कर

बाबूसिंह जैन

जानता हूं तुमने मेरी
तस्वीर बदल कर
उसकी जगह
अपनी तस्वीर लगा दी है
क्योंकि आज मैं सत्ताहीन
और तुम
महात्वाकांक्षी हो !

पर क्या कभी सोचा है
इस बारे में
क्यों होता है ऐसा, आखिर ?
क्यों हर आदमी
बदल देता है तस्वीर ? ठहरो,
अभी तुम प्रभुत्व सम्पन्न
नशे में चूर हो
मेरे बताने पर भी
जान न पाओगे

कल
जब कोई तीसरा
तुम्हारी तस्वीर हटायेगा…
तुम स्वयं जान लोगे !

□

जिन्दगी की पहचान

जगदीश सुदामा

दम भर को
दिल बहलाने वाली
ठंडी हवाओं का
एतबार ही क्या

चिलचिलाती धूप
और
बहता पसीना
जिन्दगी की पहचान है
और रहेगी

युग कोई भी हो
पसीने की एक-एक बूंद
जिन्दगी की कहानी
कहेगी।

□

अवशेष

उषा पालीवाल

कभी
बीज था मैं,
आज एक
सम्पूर्ण वृक्ष हूँ।
मेरी डालिया, मेरी टहनिया
मेरी कोमल पत्तिया
मेरे मीठे-मीठे फल
मेरा अपना निजी परिवार है।
उनके बीच रहे हो?
बहार ही बहार है।

पर मुझे
सूक्ष्मता मे ही खुशी थी
वैराट्य में नही।
अपनी रोटी सेकी
बाटकर अपने को
पर अब मैं,
मैं ही शेष हूँ
अपने वैराट्य का
अवशेष हूँ।
☐

गुमराह मत होना

अमृतसिंह पंवार

गुमराह मत होना
फूलों की
गंध से
क्योंकि फूलों ने
गंध के साथ
कांटे भी समेट रखे हैं।

कांटों से उलझ सको
क्षत-विक्षत करा सको
अपनी सुघड़-सलोनी
देह को

फूलों की सुगंध
तुम्हारी है।
उसका रग-रग, रेशा-रेशा
पंखुड़ी-पंखुड़ी
तुम्हारी है।

□

सफ़ेद दीवाल

रविदत्त पालीवाल

पहलवान लल्लू का लाल
लाल चौंक से
खींच रहा था
लकीरें
एक भकाभक सफ़ेद
कलई की गई
खड़ी हुई
एक सफेद दीवाल पर।
शरीर का सन्तुलन
पंजों के बल पैरों के
बनाए हुए
उचक-उचक
खींच रहा था लकीरें
उस एक सफ़ेद दीवाल पर।
थकावट
अहसास कराती थी उसे
अपना,
पर पहलवान लल्लू का लाल
खींचते हुए लकीरों में
देखता होगा
कोई नया सपना
उस एक सफ़ेद दीवाल पर।
खींचता था वो

गहरी हैं साफ-साफ
जो स्वयम् में ही
बन चुकी थीं
एक जलता हुआ
सवाल।
एक वृद्ध, जो
चूस रहा था
बैठा वहीं
एक गन्ना
चूस ही लिया गन्ना
रह गई ठूँठ
भींचे मुट्ठी में ठूठ ही रह गया।
देखा उसने यकायक
पहलवान लल्लू के लाल को
खींचते लकीरें
उस एक सफेद दीवाल पर।
दे मारा उसके
ठूठ रह गया गन्ना
बोला—
नादान ! जानता नहीं
अन्दर सफेदी के
कितनी लकीरें पड़ी हैं
लकीरों के कारण ही
दीवाल खड़ी है।
ठगा-सा रह गया
सिर पकडे अपना
टूट गया सपना
खड़ा ही रह गया
पहलवान लल्लू का लाल
पास उस
उस ही एक सफेद दीवाल के।

□

राधा का संसार

भोगीलाल पाटीदार

सवेरे उठकर
काम मे व्यस्त हो जाती है
पहाड़ी के नीचे बावडी से
पानी लाती है घड़े से
रात की बची राब मिर्च के साथ
पानी के घूंट से उतार लेती है
पेट भर आहार तो
किसी त्यौहार पर ही मिलता है ।
बाड़े से बकरियाँ और भेड़ें खोल
सारा दिन बनवास भोगती है
पेड़-पौधों के संग बतियाती
झरनो से अमृत जल पीती है
तन पर तीन साल पहले बनवाई
घुटनो तक घाघरी और फटा कब्जा
इस पर भी पैबन्द पर पैबन्द
सिर पर हाथ-भर मैली ओढ़नी है
प्रौढ़ शिक्षा से अनजान
बालिका वर्ष से अनभिज्ञ
षड्यन्त्र व धूर्तता से दूर
राधा का संसार
बकरियाँ और भेड़ें है ।
पहले यह काम बड़ी बहन करती थी
उसका गौना होने पर वह करती है

रात को पिता देरी से आये तो
वह भूखी ही सो गई
सवेरे बकरियाँ चराने जाते
अखबारी कागज में लपेटे
मुट्ठी भर चनों की
पुड़िया मिल गई
उन्हीं से पेट की आग को
शान्त करती जा रही
उस अखबार के टुकड़े पर
बड़े अक्षरों में छापा था
यही तो भारत है।

□

व्यथा प्रस्तर खण्ड की

हरेन्द्र कुमार त्यागी

मेरा हाथ
क्यों रहने दिया
उठा हुआ
केवल आशीर्वादार्थ
और
नयन मेरे खुले हुए !
क्या मैं उनका इष्ट हूँ
जो मात्र एक
दर्पित सा झूठा नमन् करते हैं।

परन्तु मेरा
उठा हुआ हाथ
मेरी खुली पलकें
इन्हें झुका भी तो नहीं सकता।
या उनका
जो मेरे उद्गम स्थल पर
करते हैं अर्पित
अपनी स्वेदाहुतियाँ !

उन विवश से
खाली हाथ लौटतों को देखकर
मैं
अश्रुपूरित हो भी तो नहीं सकता।

विवश हुए
अपने हाथों से
पकड़ कर उन्हें
गले से लगा भी तो नहीं सकता।

मैं अब तक
मुक्त था द्वैताद्वैती झंझटों से
पर अब स्वयं मुझे ही
स्वय का ज्ञान नहीं
मैं क्या हूँ !

क्यों कर दिया विवश
तुमने मुझे सोचने को,
हे शिल्पी !
पाने को इष्ट पराकाष्ठा अपनी
मुझको
बस जीवन दे दो।

वैसे
हे शिल्पी !
मेरे संग तुमने
कुछ भी ठीक नहीं किया।

□

पत्थर की आवाज

मुख्तार टोंकी

मूर्तिकार !
छैनी को उठा
हथौड़ी को चला
तोड़-फोड़
और
तराश मुझे

मैं !
अभी पत्थर हूँ
बेडौल
कुरूप
तेरे हाथों से निखर जाऊँगा···

मूर्तिकार !
न कर सोच-विचार
अपने हाथो का चमत्कार दिखा
मुझ मे आकार
बहुत से हैं छिपे
कोई आकार बना
मुझको शाहकार बना···

फूल बना
मोर बना

बना मासूम-सा बच्चा कोई
अप्सरा बना, या फिर
किसी देवी की चमकती मूरत
कोई भी रूप बना दे मेरा
मेरे हर रूप मे
तेरी ही कला झलकेगी
मैं अगर निखरा
तेरी ही कला निखरेगी…

□

भूख

अरनी रॉबर्ट्स

मेरे पेट में रोटी थी
इसलिए मुझे भूख से
बिलबिलाते इंसान को देखकर
हंसी आती थी !

वह मेरे लिए मात्र मनोरंजन
का साधन था।
भूख मेरे लिए
एक साधारण-सी
घटना की तरह थी—
जिसे मैं भला क्यों याद रखता
क्योंकि मेरे पेट में रोटी थी
मैं तृप्त था।

भूख का नाम मैंने
सुना जरूर था, पर
उसका अहसास मुझे
छू तक नहीं गया था।

नितांत अपरिचित थी भूख
मेरे लिए, किसी अजनबी की तरह
भूख मुझे कभी किस्से-कहानी-सी
लगती थी

तो कभी कविता-सी दिखाई देती थी
कभी पहेली-सी लगती थी
तो कभी प्रश्न की तरह ?
पर आज
भूख को मैं जान पाया हूँ।

आज भूख से,
मेरा साक्षात्कार हो गया है
आज मेरे पेट मे
रोटी नही है
और मैं भूखा हूं।

बिल्कुल भूखा
और मुझे रोटी की
तलाश है।

□

अंकुराई इच्छाएँ

उषा किरण जैन

अंकुराई इच्छाओं के बारे मे
सोचा था
विशाल द्रुमों मे
परिवर्तित होकर एक दिन ये
न सिर्फ घनी शीतल छाया देंगी
बल्कि महकते पुष्पों
और मधुर फलों से
भर देंगी जीवन

कितना लम्बा इन्तजार किया
उस एक दिन का
पर अभी तक नसीब नही हुआ वह दिन
थक हार नजर डाली विगत पर
तो देखा—

सूखे, दबे, कुचले, मुरझाए निश्चेष्ट-से
अंकुरो को
और सोचा—

कब दिया था इनमे उर्वरक ?
कब सींचा था इन्हें ?
रोपित करने के बाद
कब संभाला था इन्हे ?

कौन-सा था वह दिन ?

स्मृति पर डाला खूब जोर
शायद वह दिन कभी आया ही नहीं

फिर भी जाने क्यूं
हम हैं कि
आज भी उन्हीं
अंकुराई इच्छाओं को लेकर
प्रतीक्षारत हैं
महकते पुष्पों और
मधुर फलों वाले
दिन की।

□

फासला

शिशुपालसिंह 'नारसा'

चिलचिलाती धूप में
तपती कोलतार की सड़क
सरपट दौड़ती गाड़ियां
और भागता आदमी
जिस राह पर चल रहे हैं ?
जिस राह से तुम गुजर रहे हो
गाड़ी सरपट दौड़ रही है
किसने बनायी ?

आंधी बन जाए तो
सरदी की ठिठुराती रात
और गरमी की तपती दुपहरी की
वह कहां परवाह करता है ?
गैंती और फावड़ा उठाकर
चल देता है।
चिड़ियों के जगने और चहकने का
इन्तजार वह कब करता है—

चट्टानों को काट-काट
गहरे गड्ढों को पाट-पाट
जिसने यह समतल सड़क बनायी।

चम्बल-भाखड़ा हीराकुण्ड-से
बंध बांध

कौन-सा था वह दिन ?

स्मृति पर डाला खूब ज़ोर
शायद वह दिन कभी आया ही नहीं

फिर भी जाने क्यूं
हम हैं कि
आज भी उन्हीं
अंकुराई इच्छाओं को लेकर
प्रतीक्षारत हैं
महकते पुष्पों और
मधुर फलों वाले
दिन की।

□

फासला

शिशुपालसिंह 'नासरा'

चिलचिलाती धूप मे
तपती कोलतार की सडक
सरपट दौड़ती गाड़ियां
और भागता आदमी
जिस राह पर चल रहे हैं ?
जिस राह से तुम गुजर रहे हो
गाड़ी सरपट दौड़ रही है
किसने बनायी ?

बावळी बन जाए तो
सरदी की ठिठुराती रात
और गरमी की तपती दुपहरी की
वह कहां परवाह करता है ?
गैंती और फावड़ा उठाकर
चल देता है।
चिड़ियों के जगने और चहकने का
इन्तजार वह कब करता है—

चट्टानों को काट-काट
गहरे गड्ढों को पाट-पाट
जिसने यह समतल सड़क बनायी।

चम्बल-भाखड़ा हीराकुण्ड-से
बंध बांध

जिन्दगी के साथे रंग रंग
जिसने धुन सब जिन्दगी गुंजायी।

अनन्त तारों को नए-नए
फूलों के रंग नए नए
रंग रूप
यह सावन-भादों की ऋतु बनायी।

नदी धूप किनारे को
ममता का प्यार सहारे को
ये मात-पिता
ये मित्र-प्यार
जिसने उतारे।

तुम्हारे लिए कल-कल
रुन-झुन की राग-राग
किसने सुन्दर से गगन बनाये।

कांटे भी तुम्हें चुभने न पायें
इसलिए उसने जूते बनाये।
ऐ बुद्धिजीवी कहलाने वाले
इतना सब कुछ दिया तुम्हें
किसने ?

ठण्डे दिमाग से सोच कभी
इतना सब देने वाले को
तुमने क्या दिया ?

देने की सोचे तो
दो कदम पीछे
और ले आ उसे
दो कदम आगे
तो फासला यह
चार कदम का
हो जाएगा पूरा।

☐

पतंग

रजनी कुलश्रेष्ठ

पतंगें ही पतंगें
उड़ रही थी आकाश मे

तभी एक पतंग आगे बढ़ी
काँचल मांझे वाली
उसने अपने समीप की
दूसरी पतंगो के इर्द-गिर्द
मँडराना प्रारम्भ कर दिया

इधर-उधर लहरा कर
अद्भुत भाव भंगिमाएँ दिखाकर
कभी गले मिलने का अभिनय
कभी दूर जाने का भ्रम
और फिर
अनायास समीप आ
एक पतंग का
मूलोच्छेद कर डाला

उस लहराती पतनोन्मुखी पतग को
विजय गर्व से भरकर
देखती यह पतंग
अब दुगुने आत्मविश्वास से

एक विशाल जुलूस

हनुमान दीक्षित

एक विशाल जुलूस
गर्दो-गुबार उड़ाता
गुजरा है अभी, सामने से,
अकाल का जायजा लेने।
हाई कमान आया है दिल्ली से,
नगे-अधनगे
भूखों की भीड
मगर टिकती नही
कोई किसी की बात सुनती नही।
चतुर सचालक ने की घोषणा—
सबको रोटी मिलेगी,
रोजगार मिलेगा,
बैठ गई भीड़ सुना नेता को,
जैसे देवता हो।
दे वरदान,
हो गया अन्तर्धान।
रह गई भीड़ मुँह टापती,
रह गई गूंज
रोटी मिलेगी
रोजगार मिलेगा।

□

कई तूफाँ भी नाव तक आए

कुन्दनसिंह 'सजल'

राह में सौ घुमाव तक आये।
लोग चलकर पड़ाव तक आये ॥

छोड़ मुझको सफर में फिर तनहा
गांव के लोग, गांव तक आये ॥

धूप से जिनका तन पिघलता है।
साथ आये तो छाँव तक आये ॥

खुदा ने रहम कर सोंड़ बख्शी।
उसमे मेरे न पांव तक आये ॥

जिन्दगी की पहचानी राहों में
कई अनजाने ठांव तक आये ॥

हम तो साहिल पै सजल पहुँच गये,
कई तूफां भी नाव तक आये ॥

☐

विरोधी स्वर

घनश्याम सुखवाल

शीशे के शरीर वाले
फौलादी दीवारों को
तोड़ने के क्रम में
उससे टकरा रहे हैं !

वे यह जानते भी हैं
कि इस फौलादी दीवारों से टकरा कर
वे टूट जायेंगे
किरच-किरच बिखर जायेंगे
फिर भी वे टकरा रहे हैं।

संकल्प और आस्थाएँ ही तो
गिलहरी को अपनी पूंछ से
महासागर को रिक्त करने की
प्रेरणा और साहस देती हैं।

यह सुनिश्चित है कि
ये फौलादी दीवारें टूटेंगी नहीं
किन्तु वे कभी यह भी तो नहीं कह पायेंगी
कि कभी किसी ने भी
उन्हें तोड़ने का प्रयास ही नहीं किया है
कभी भी उनके लिए
विरोधी स्वर नहीं गूंजा है।

□

सोने की जंजीरें

माधव नागदा

अतीत की रस्सियों से
जकड़ा हुआ भूत
जब भी मुक्ति को छटपटाता है
दलदल में धँसे
सैकड़ों पिशाच
अपने केक्टसी हाथ फैलाकर
उसे मजबूती से पकड़ लेते हैं।
जरूरी नहीं कि
हमेशा गुलामी का कारण
विदेशी आक्रान्ता ही हो
कई बार हमारे अपने ही लोग
पहना देते हैं सोने की जंजीरें
और भ्रम पैदा करते हैं
कि ये हमारे बेशकीमती जेवरात हैं।
साथियो
बेड़ियाँ बेड़ियाँ होती हैं
चाहे वे स्वर्ण की हों
लौह की
या मूंज रज्जु की हों,
इनके जेवर होने का भ्रमजाल तोड़ना
मुक्ति की ओर हमारा
पहला कदम है।

□

खाता-बही

जगदीश प्रसाद सैनी

एक दिन उसने
रेल के डिब्बे में लगी
आग में घुस कर
अपने अंग जला कर
अजनबी लोगों को
बाहर निकाला था
धर्म की खातिर।

आज उसने
वर्षों से भाई-भाई की तरह
साथ रहने वाले
अपने पड़ोसी को
परिवार समेत
उसके घर में आग लगा कर
जला डाला।

धर्म की खाता-बही में
पहले और दूसरे
कर्म को
किस-किस पन्ने पर
खतायें ?

□

गजल

अरविन्द चूरुवी

हर पवित्र चीज पर थूका गया है,
कागजी नहरों से कब सूखा गया है।

नुकसान सदा सर्वदा होता है अपना,
गोरो, सियारो, बोलो इनका क्या गया है।

कहते हो आप उनको अपना, यारो !
उन्हें गैरों के संग देखा गया है।

चखा बादाम-सा मीठा समझ कर,
वो निकले खारे मुंह कड़वा गया है।

परोपकार का चोला पहन कर
गायों का घास भी वो खा गया है।

वो जिन्दाबाद के नारे लगाता,
अभी एक भीड़ का रेला गया है।

जंग के कुओं और दरिया से उठा,
ओज़ोन पर्त तक धुंआ गया है।

भले लोगों को वो फटकारा करते,
माफिया को नहीं छुआ गया है।

अहम् उनका सदा उठा है ऊँचा,
'अरविंद' जितना ही नमता गया है।

□

बरसात में

पुष्पलता कश्यप

सरगोशियाँ करते हवा के झोंके
चिथड़ों के मानिन्द लटकते
बदरंग, मैले बादलों के रेले

बुझा-बुझा झूम रहा आकाश नशे में
प्रेमातुर

जख्मों-से उभरे गवाक्ष
ताश के पत्तों-सी बिखरी
छितरी इमारतें
अंतरिक्ष की आँख में

हवा चलती है
तो चादर में सलवटें
पड़ जाती हैं।

□

जिन्दा रहने के लिए

जयपाल सिंह राठी

मैं लड़ने के लिए
रोज एक रणनीति बनाता हूँ
यदि सामने वाला भाँप जाता है
मेरी चाल
तो हट जाता हूँ चुपचाप पीछे।

हमेशा जीत की ताक में रहता हूँ
विजय की आशा से ही आगे बढ़ता
नहीं तो पीछे हट जाता हूँ।

खो जाता हूँ भीड़ में
लेकिन हारता नहीं,
क्या कुछ नहीं करता मैं—
बनाता हूँ, ढहाता हूँ
नए किले, नई प्लान
और नई युद्ध नीति।

अनवरत जारी रहता है
सिद्धान्तों का यही सिलसिला।
सभी कुछ वाजिब है
जिन्दा रहने के लिए।

□

आईना

महेन्द्र आचार्य

क्यों तोड़ते हो
आईना,
अब डरते हो
सब सच्चाई
उगल देगा यह,
पर
तुम्हारे चकनाचूर
करने के प्रयास पर भी
इसका एक-एक टुकड़ा
अपने आप में
एक पूरा
आईना होगा,
उसमें तुम्हारी
हर तस्वीर दिखेगी
कहीं पूरी
कहीं खण्डित,
पर
तुम्हारे अपराधों की
झांकियां
रू—ब—रू

□

तुम्हारा खत

गणेश तारे

दोस्त,
अभी कुछ दिन पहले ही
मिला था
तुम्हारा वह खत
जिसमें तुमने बुलाया था
तुम्हारे शहर मे
फिर एक बार !

कितना-कितना खुश हो गया था मैं,
तुम्हारा खत लिए
सारे शहर घूम कर बताता फिरा,
"देखो मेरे भाई का
आया है निमन्त्रण
उसके शहर, फिर घूमने के लिए !"

खुशी की खुमारी
उतरी भी न थी
कि भेज दी तुमने—
एक गुजारिश
तुम्हारे शहर मे न आने की !
सच कहता हूँ
तुम्हारी चिट्ठी

एक तीर-सी लगी मुझे !
आखिर सोचा कैसे
अंधेरे माहौल में
बारुद की गंध
हाँफते-दौड़ते कदमों के बीच
तुम एक-एक पल
जिंदगी-मौत के अधर झूल में
दोलन करते रहोगे
और तुम्हारा यह मित्र
अगवा किए चाँद
गुमशुदा सूरज
खौफ फैलाती हवाओं
तिल-तिल रेंग रही नफरत
के भय से
यहाँ निश्चित बैठा रहेगा
तुम्हारे निमंत्रण को वापस ले लेने पर
शुक्रगुजार होगा।

दोस्त
जिस मौसम में
तुम अपने जीवन का पल-पल
भय आतंक आशंका में
गुजार रहे हो
मैं—हाँ—मैं
उसी पीड़ा में भागीदार होना चाहता हूँ

सच मानना
बिना किसी मेहमाननवाजी की
अपेक्षा किए,
आ रहा हूँ मैं
तुमसे गले लगकर
जी भर के रोने,
अपनी आँखों से
उजड़े हुए घर

जख्मी हुए लोग
वीरान गुलजार
रोते-बिलखते बच्चों को देखने
क्योंकि ये सब
मेरे ही जिस्म के हिस्से हैं।

सदियों से
एक ही खून
बहता है
हम सबके भीतर।
रचे-पचे हैं
एक ही माटी मे
हम सब—
फिर क्यों न हों
संवेदित !

यहाँ शेप कुशल है
छोटों को प्यार
बड़ों को प्रणाम
तुम्हारा अपना
दोस्त गुमनाम !

□

खेतों में धन कहाँ गड़ा है

योगेन्द्र सिंह भाटी 'योगी'

एक समय की बात गाँव में,
रहता था एक वृद्ध किसान
बड़ा-सा परिवार था उसका
थोड़े मगर खेत-खलिहान।

तीन पुत्र थे उस किसान के
तीनों सुंदर और जवान
दिन-भर सैर-सपाटे करते
नहीं लेश भी घर का ध्यान।

यही नहीं घर में बहुएँ थीं
उनका भी मुखिया पर भार
बेटे मेहनत से कतराते
बाप बिचारा था लाचार।

जूझ रहा था बाप अकेला
खेतों पर रहकर दिन रात
खून पसीना एक कर रहा
किससे छिपी हुई थी बात।

खेती जो थोड़ी थी उसकी
लगा हुआ था बहु परिवार
अपनी मेहनत के बूते वह
खींच रहा था उसका भार।

निश्चित अपनी मेहनत पर था
जी भर कर उसको संतोष
पर पुत्र निकम्मे जो निकले
इसी बात का उसको रोष।

ज्यों ज्यों मरण बढ़ रहे उसके
अतिशय जर्जरता की ओर
त्यों-त्यों वह चिंतित होता था
मिला न अब तक कोई छोर।

बेटों को उसने समझाया
ऊँच नीच का सारा भेद
पर वे समझाये ना समझे—
इसी बात का उसको खेद।

आखिर उन्हें कौन समझाये
यह चिन्ता खाये जाती थी—
अन्तर परम व्यथित था उसका
बात मुँह पर नहीं आती थी।

भीतर से वह टूट चुका था
चिंता ने डाला था डेरा
पीता था वह घूट जहर के
रोग-शोक ने था आ घेरा।

अब तो और जरूरी जो था
पुत्रों को रस्ते पर लाना
कब उड़ जाए प्राण का पंछी
इसका ही अब कौन ठिकाना।

चिंता बदल गयी चिंतन में
आखिर निकला शुभ निष्कर्ष
जिसने खोजा उसने पाया
श्रम में ही सच्चा उत्कर्ष।

अंत समय जब निकट आ चुका
उसने पुत्रों को बुलवाया
पड़े हुए मृत्यु-शैय्या पर,
यह अंतिम संदेश सुनाया?

बेटों से तब कहा बाप ने
बेटो! सुनो राज की बात
मेरा धन संचित खेतों में—
यह मेरी अंतिम सौगात।

जब भी तुमको पड़े जरूरत,
गड़ा हुआ धन ले सकते हो
पड़े आपदा जब भी तुम पर
जीवन-नौका खे सकते हो।

यह कह उसने आँख मूंद ली
बेटों का छिन गया सहारा
काटे जैसे-तैसे कुछ दिन
खत्म हुआ घर का धन सारा।

बिना कमाए कब तक चलता
घर का यह संचित धन सारा
व्याकुल था परिवार भूख से
अपनों ने अब किया किनारा।

तीनों भाई लगे सोचने,
क्यों न निकालें खेतों का धन
पड़े हुए रोटी के लाले
कब तक मारें हम अपना मन?

सब के उतरी बात गले तब
टूट पड़े खेतों पर परिजन
चप्पा-चप्पा खोद दिया, पर,
मिला न उनको अपना ही धन।

खेत खुदे गये गहराई तक,
मिट्टी का काया कल्प हुआ
संस्कारित बीजों को लेकर,
नूतन-संकल्प-विकल्प हुआ।

दादा ने उनको समझाया।
झूठ न बोले दादा हरगिज
उनकी ऊँची सूझ-बूझ थी
बुद्धि का उपयोग करो निज।

खेत खुदे जब गहराई तक
उनमें बीज डालकर देखो—
मेहनत निश्चित रंग लायेगी—
भू का रस निकाल कर देखो।

बात समझ में आयी उनके,
खेतों में तब हुई बुवाई
मिला समय पर वर्षा का जल
यूं खेतों में फसल उगाई।

पकी फसल समय आने पर
फिर तो होने लगी कटाई
आशातीत हुआ उत्पादन,
मेहनत यूं आखिर रंग लाई।

श्रम में निहित सम्पदा सारी
दादा ने संदेश दिया है
इस रहस्य को उद्घाटित कर
हम पर बहु उपकार किया है।

श्रम का मूल्य सभी ने समझा
घर-घर में खुशहाली छाई
दीपित था वह दादा का घर
रूठी लक्ष्मी जो घर आई।

□

छोटी मछलियाँ

ब्रजभूषण भट्ट

ये बिचारी
छोटी-छोटी मछलियाँ
कहाँ जायें
क्या करें
कैसे जियें

यदि
ये
समुद्र के गहरे पानी में जाती है
तो
इन्हें
बड़ी-बड़ी मछलियाँ निगल जाती है,
और
यदि ये
किनारों पर
छिछले पानी मे आती हैं,
तो
इन्हें
बड़े-बड़े जाल जकड़ लेते हैं
काँटे फँसा लेते हैं,
जिससे
इन्हें
आग में भूनकर-पकाकर

टेबिल पर सजाकर
स्वादिष्ट भोजन का साधन बना लिया जाता है,

क्षोभ है
तो
इस बात का
कि—
पानी के जीव
पानी के जीव को ही निगल जाते हैं
खा जाते हैं।

□

क्यों नहीं सूरज उग रहा

करणीदान बारहठ

देखो तो,
पैराशूट से कैसे उतर रहा है
अंधेरा
धीमे धीमे धरती को ढकता जा रहा है।
पहले तो कभी ऐसा नहीं था।
क्यों नहीं सूरज उग रहा ?
हो सकता है उग गया हो,
और उसकी किरणें
धरती के कुओं से निरन्तर निकलते
धुंये को न चीरती हों।
माँ, तुम तो अब भी इन अहंतुष्टियों और
महत्वाकांक्षियों को जन्म दे रही हो
जबकि तुझे पता है—
ये चंगेजखाँ और हिटलर की ही
पुनरावृत्ति करेंगे।
और खून से नहाने में ही अपनी मुक्ति मानेंगे।
क्योंकि
उन्हें तो इतिहास में अपना नाम
जुड़वाने की हविश है
क्योंकि
वे जानते हैं—बुद्ध और ईसा बनने की
उनमें सामर्थ्य नहीं है।

□

बस्ती में

रमेशचन्द्र पारीक

जंगल के चालाक जानवर
आ छुपे हैं
कुछ गणवेश बदलकर
कुछ परिवेश बदलकर
बस्ती-बस्ती में।

जंग, जंगलीपन
और जोर-जबर्दस्ती
कदम-कदम पर पागलपन
खो चुकी आबाद बस्ती
कुछ खुराफाती जीव
जिंदगी में आ रहे हैं
बस्ती-बस्ती में।

सदियों के इतिहास को
मानवता की आस को
सभ्यता संस्कृति के विश्वास को
स्वार्थ की सतरंगी तमन्नाओं पर
चूस रहे हैं हिंसक
बस्ती-बस्ती में।

मजहब की मर्यादाएँ
समाज की रस्म-ओ-अदाएँ
पीढ़ी दर पीढ़ी संचरित

जीवन मूल्यगत वफाएँ
गुल कर रहे हैं
अटके भटके जंतु
बस्ती-बस्ती मे।

जंगल की विपदाएँ
ढाने लगी हैं कहर
खुशहाल बस्ती पर।
वनचरों की भीड़
गटकने लगी है
संबंधों की मलाई
बस्ती-बस्ती में।

□

तीन लघु कविताएँ

गिरवरप्रसाद बिस्सा

अन्तर केवल

इतिहास
कुरेदता
शेष स्मृतियाँ
अन्तर केवल
परोक्ष
अपरोक्ष का है।

दो शब्द तो हैं

जिन्दा लाशों से
अच्छा है
वह
कफन से ढकी देह
जिसके लिए
कहने को
लोगों के पास
दो शब्द तो हैं।

अज्ञ

अब सूरज
नही निकलेगा
क्योंकि
वह बंद है
मेरी मुट्ठी मे
शायद
तुम अनभिज्ञ हो
अपनी सीमाओं से।

□

पर जिंदा हैं आज भी

दिनेशचन्द्र श्रीमाल

याद है मुझे वह,
बर्बरता, अत्याचार, दुराचार
न मिला कहीं शिष्टाचार
क्योंकि
हम गुलाम थे,
देश गुलाम था,
पर हमने
झिझोड़ दिया तन-मन
फेंक दी गुलामी की चादर
मिलने लगी खुली सांसें,
बंधने लगी नयी उम्मीदें।
पर अब —
चालीस वर्षों के बाद,
देश का आलम,
क्या है, कैसा है,
वोट देने जाते हैं,
मुहर भी लगाते हैं,
पर जिन्दा आज भी,
वही बर्बरता, अत्याचार, दुराचार,
कहाँ से लाएँ शिष्टाचार?

□

अगर तुम न होते

कमर मेवाड़ी

अगर तुम न होते दुनिया में
इस दुनिया का क्या होता ?
पड़े रहते लोग बिस्तरों पर
 जिन्दा लाश की तरह

उनके आदेश पर
कौन उठ खडा होता फिर

कौन खोलता फिर कार का फाटक
पिलाता बेड टी
माजता बर्तन
करता बूट पॉलिश
उठाता कौन मैला ?

गलियाँ गंधाती रहती
गर्भ में मर जाते बच्चे
धरती रह जाती बंजर
दुनिया इतनी खूबसूरत न होती

अगर तुम न होते इस दुनिया मे
इस दुनिया का क्या होता ?

□

पर जिंदा हैं आज भी

दिनेशचन्द्र श्रीमाल

याद है मुझे यह,
बर्बरता, अत्याचार, दुराचार
न मिला कहीं शिष्टाचार
क्योंकि
हम गुलाम थे,
देश गुलाम था,
पर हमने
झिझोड़ दिया तन-मन
फेंक दी गुलामी की चादर
मिलने लगी खुली सांसें,
बँधने लगी नयी उम्मीदें।
पर अब —
चालीस वर्षों के बाद,
देश का आलम,
क्या है, कैसा है,
वोट देने जाते हैं,
मुहर भी लगाते हैं,
पर जिन्दा आज भी,
वही बर्बरता, अत्याचार, दुराचार,
कहाँ से लाएँ शिष्टाचार?

□

अगर तुम न होते

कमर मेवाड़ी

अगर तुम न होते दुनिया में
इस दुनिया का क्या होता ?
पड़े रहते लोग बिस्तरों पर
जिन्दा लाश की तरह

उनके आदेश पर
कौन उठ खड़ा होता फिर

कौन खोलता फिर कार का फाटक
पिलाता बेड टी
मांजता बर्तन
करता बूट पॉलिश
उठाता कौन मैला ?

गलियाँ गंधाती रहती
गर्भ मे मर जाते बच्चे
धरती रह जाती बंजर
दुनिया इतनी खूबसूरत न होती

अगर तुम न होते इस दुनिया मे
इस दुनिया का क्या होता ?

☐

सम्पूर्ण इकाई

भागीरथ भार्गव

फूलों और गंध से भरी थी
विस्तार पाती सुनहरी-गगन तक घाटी
पगडंडियों के दोनों ओर
हरे-भरे गाछों की थी
सुकून देती शीतल छांह।

सब उछाह से भरे मन
आकाश में तना था सतरंगी इन्द्रधनुष
रंगों और त्यौहार वाले थे वे अनुपम दृश्य
एक उजारा, एक दिव्य आलोक से
दैदीप्यमान था वन प्रान्तर।

उस सम्पूर्ण घाटी में— हम ही तो थे
पक्षियों की चहचहाट के साथ-साथ बतियाते
पास में बहते झरने की सरसता को आत्मसात
एक दूसरे की धड़कनों को अनुभव करते
उस भरे-पूरे स्वप्निल जगत से
वस्तुतः साक्षात्कार करते
केवल हम ही तो थे—सम्पूर्ण एक इकाई।

□

कथा ने मेरी आँखें खोलीं

अशोक कुमार व्यास

यह कविता नहीं मैंने जोड़ी
लेखनी हकीकत की ओर दौडी ।

'राजू' है इसका मुख्य पात्र
छठी कक्षा के पढ़ता है शास्त्र ।

वह मूँगफली बेचने वाला है
हिमाचल का रहने वाला है ।

'केन्द्रीय विद्यालय' का विद्यार्थी
सभ्य संस्कारित वह शिक्षार्थी ।

मूँगफली की मन में आई
ठेले वाले को आवाज लगाई ।

ठेला लेकर वह आया, बोला
अंकल पानी पीकर 'जस्ट' आया ।

इस अंकल ने झकझोर दिया
यह लिखने को मजबूर किया ।

मूँगफली बेचने तू क्यों आया ?
बोला, किस्मत ने यहाँ पहुँचाया ।

पिता मेरे रिटायर्ड फौजी
पीने के बाद है मनमौजी ।

पेन्शन उड़ती है पीने में,
उसको क्या राजू के जीने में।

राजू रात को पढ़ता है,
होमवर्क मन में करता है।

यही है राजू की कहानी,
उसके मुँह से सुनी वाणी।

इस कथा ने मेरी आँखें खोलीं
पूरे रस्ते में सोच रहा था।

ऐसे कितने राजू होंगे
जो मूँगफली बेचते होंगे।

□

गुड़हल के फूल

महेन्द्र यादव

वे सब
कितने लापरवाह
हो गये हैं !
जिनकी लड़कियाँ
अभी
जवान हुई हैं
लड़के—आवारा,
अभी भी
देर रात गये
लौटते हैं
'घर',

आँगन मे जहाँ
दिन भर
गुड़हल के फूल
हँसते हैं,
रात भर
एक नंगा
अलाव सुलगता है
गीली लकड़ियों की तरह
जलता है
परिवेश,

मुझे और आपको
लगता है
यह बदमाश,

चाय पीते हुए
होते हैं चिन्तित
या फिर—गालियाँ
चबाते हुए
चले जाते हैं
घरों को !

फिर मिलने पर
कहते हैं
भाड़ में जायें
अपना क्या लेते हैं ?

□

राजस्थानी गाँव

पारसचन्द्र जैन

यहाँ की भोर सुहानी और सुनहरी शाम,
यह है मेरा राजस्थानी गाँव।

यहाँ दिन-दोपहरी पडती है जब घाम,
पेडों से मिलती है सबको ठण्डी छांव।

यहाँ की झोपड़ियों में बसते है कई राम,
मिलती है सीता-सी नारी यहाँ हर ठाँव।

यहाँ नही लोभ-लालच का कोई काम,
यहाँ नही चलते झूठे जूअे के दाँव।

यहाँ जब बागो मे बौराते हैं आम,
सुनायी पड़ती कोयल की कुहु-कुहु
और कौवे की काँव-काँव।

यहाँ जब खलिहानो मे चलता है काम,
जमीं पर नही टिकते तब जन-जन के पाँव।

□

आधुनिक सत्य

ऊषा रानी दवे

आधुनिक सत्य,
जिसका केवल एक ही परिचय है,
स्वार्थों की पूर्ति
कर्त्तव्यों की आहुति
विचार हैं बेबुनियाद,
किससे करें फरियाद,
किसी को आज कुछ,
नहीं रह गया है याद,
याद रहा तो केवल
षड्यन्त्र
जिसमें होते हैं छः यन्त्र
अज्ञान, निंदा, घृणा,
छल, कठोरता और अविश्वास।

मुक्तक

अमृत क्यों तूने फेंक दिया,
उत्कृष्ट जीवन क्यों छोड़ दिया,
हे मानव तूने अपने,
जीवन में क्यों जहर घोल दिया।

□

कदम-कदम

रामेश्वरलाल गर्ग 'तूफान'

आग से खेलते हैं
अंगारों को झेलते हैं;
फिर भी उम्र भर अभाव भरी जिन्दगी
और फाकों की जिन्दगी के दण्ड क्यों पेलते हैं।
प्रशांत-निशात अलसाया उठता है
दिन-भर रोटी के पीछे बेतहाशा दौड़ता है
चट्टानों के गर्भ से शिलाखण्ड तोड़ता है।
तब भी तृप्त नहीं होती उसकी भूख-भार्या,
बन्द हो पाती नहीं बच्चों की कूक भी।
संध्या में सोता वह निशात की आश में
मुरझाये ओठों की ममता के पाश में;
कदम-कदम कांटे हर कदम आग है।
मेहनत का खून अरे कैसे इनके भाग हैं?
तिजोरियां तोड़ दो, दौलत को मोड़ दो
सविनय से पिघले नहीं तो बलात् छीन लो
इतने सारे सुखों से कुछ तुम भी बीन लो।

□

शाश्वत सत्य

राधेश्याम शर्मा

मैं देख रहा हूँ
कैनवास पर उभरती आड़ी, तिरछी रेखाओं को
जो बदलती जा रही है, कलाकार की तूलिका का स्पर्श पाकर
एक नये आयाम में।
मैं देख रहा हूँ, इन आड़ी-तिरछी रेखाओं में उभरते हुए
पहाड़, नदी, नाले, उगता हुआ सूरज
और लम्बे खजूर के पेड़।
धूप में खेलते बच्चे, भागते हुए खरगोश।
झोपड़ी के द्वार पर बैठ बेटे की बाट जोहती बुढ़िया।
अलसाया-सा कलाकार लान से उठ अन्दर चला गया।
शायद चाय के दो घूंट लेने या अपनी नई-नवेली दुल्हन से मिलने।
अचानक एक बदली सी उठी
और बिजली की चमक के साथ पानी की बौछार होने लगी।
जो रंग अभी सूखा न था, घुल गया पानी के आघात से।
हँसता खेलता एक चित्र मिट गया
अस्तित्व रहा तो मात्र कुछ आड़ी-तिरछी लकीरों का।

□

चौराहे की लाठी

गौरीशंकर 'आर्य'

आज बहुत पुरानी
जानी पहचानी
भैंस मिली।
मैंने पूछा—"अरे किधर जा रही है ?"
उसने गर्दन घुमाई
सहमी-सी नजर उठाई
और धीरे से कहा—'चुप, मेरे पीछे लाठी आ रही है।'
मैंने देखा—लाठी भी पुरानी है
लेकिन उसे पकड़ने वाला हाथ नया है।
सोचा—आखिर यह बात क्या है
"कौन हो तुम ?" मैं आश्चर्य से बोला
हाथ मुस्कराया—उसने रहस्य खोला—
देखो लाठी तो वही है—वही रहेगी
हाथ बदलते रहते हैं।
"जिसकी लाठी उसकी भैंस"—पुराने लोग कहते हैं।
अब यों कहो—
"लाठी जिसके हाथ मे, भैंस उसके साथ मे।
पहले यह लाठी पुश्तैनी कहाती थी
बेटे को बाप से अपने आप मिल जाती थी
अब यह चौराहे पर पडी रहती है
कोई भी पंजा लड़ाये
जोर आजमाये, लाठी उठाये
और भैंस को हाँककर अपने साथ ले जाये।"

□

अभिलाषा

भंवरलाल प्रभाकर

जीवन दीपक
सत्कर्मों की वर्तिका
मैं इसे बनाऊंगा
क्योंकि
मेरी भी है
एक चाह,
दीपक की
वर्तिका बनकर
सतत जलकर
अंधेरे मे
भटक रहे
पथिकों को
दिखाऊं राह ॥

□

शहर पर कहर

राधेश्याम सरावगी

जल रहा शहर
बरस रहा कहर
जानकर भी इन्सान
क्यों हो रहा बे-खबर ?

बे-गुनाह मर रहे
लाशों के ढेर लग रहे,
आबाद थी जो गलियां
मरघट में बदल रहे,
दहशत का साया
गहराता आठों पहर
जल रहा शहर···

असहाय बिलखते
पुरुषार्थ नपुंसक हो गया
आदमी था काम का
बेकार बोझा हो गया
मासूम कलियां भी
उगलने लगी जहर।
जल रहा शहर···

□

घायल वसंत की हवा

इस्हाक आलम सिरोही

आखिरकार
गर्म हवा विस्फोटित हो गयी,
नस्ले-आदम रक्त-रंजित हो गयी।
अरब के रेगिस्तान में
धूप पिघल गयी,
और चांदनी जल गयी।
समन्दर में,
तेल की नदियां मिल गयी।
लाल जमीं का आस्मां
काला हो गया।
इस काले रंग से
हर रंग खतरे में पड़ गया
हरा-भरा गुलशन उजड़ गया।
फिर भला
हवा
वहां
कैसे
बसन्ती गीत गा सकती है ?
जहां
हवा के पांव में
घुंघरू की जगह
विस्फोटक बंधते हैं
तबले की जगह

बम-धमाके बजते हैं।
फूलों की जगह
कांटे खिलते हैं।
शूलों की जमीन में
बसंत घायल हो जाता है।
घायल बसंत की हवा
गाती नहीं
रोती है।
वहां नींद
चैन से नहीं सोती है।
वसंत में
बसंत
देखने के लिए तो
पहले खुद को बसंत होना होगा।
□

दो मुसाफिर

भरतसिंह ओला 'भरत'

रेगिस्तान में
भटकता मुसाफिर
प्यास और थकान
बन्दर के बच्चे की तरह
छाती से चिपकाए
ढूंढ़ रहा है
बूंद दो बूंद
पानी
बबूल की छाया।

फूलों लदे
बाग में
घूम रहा है
मुसाफिर
अपने टॉमी कुत्ते के साथ
फव्वारे से गुजरता
कोमल घास को रौंदता
ढूंढ़ रहा है ठण्ड
फूलों लदी छाया।

□

सम्पर्क सूत्र

1. कला वर्मा, राज० कन्या उ.प्रा.वि , मोही (राजसमन्द) 2 अनिल गगल, केन्द्रीय विद्यालय, अलवर 3. भगवतीलाल व्यास, 35 खारोल कॉलोनी, फतहपुरा, उदयपुर 4. भागीरथ भार्गव, 88 आर्य नगर, अलवर 5. कमर मेवाड़ी, चांदपोल, कांकरोली (उदयपुर) 6. प्रमिला शर्मा, रा. प्रा. वि , सागतलाई, पो थेवना (बांसवाड़ा) 7. मनमोहन झा, रा. उ. मा वि , सिटी, बांसवाड़ा 8 भगवती लाल शर्मा, प्र. रा. उ. प्रा. वि., कश्मोर (चित्तौड़गढ़) 9. निशान्त, निकट वन विभाग, वार्ड नं. 14, पीलीबंगा (गगानगर) 10 वासुदेव चतुर्वेदी, एस आई. ई आर. टी., सहेली मार्ग, उदयपुर 11. राधेश्याम अटल, 81 बाल मन्दिर कॉलोनी, मानटाउन, सवाई माधोपुर 12 मायामृग, श्री नेहरू मॉडल स्कूल, प्रेमनगर, हनुमानगढ़ टाउन, (गगानगर) 13 मणि बावरा, राज नगर उ. मा. वि , बांसवाड़ा 14. नमोनाथ अवस्थी, डीरावली, सेड़ला-322240 (सवाई माधोपुर) 15. दीपचन्द सुथार, रा. मा. वि., मेड़ताशहर (नागौर) 16 शंकर हुसैन, रा. उ. प्रा. वि , (पीपेरा) मलकीसर (बीकानेर) 17 अलका भटनागर, रा. बालिका मा.वि., मानटाउन, सवाई माधोपुर 18. अरविन्द तिवारी एस.सी उ. मा. वि., कुचामन सिटी (नागौर) 19. बजरंगलाल जेठू, रा उ मा वि., जसवन्तगढ़ (नागौर) 20. रमेश भारद्वाज, 4112 चौकड़ी वालो का मोहल्ला, नसीराबाद 21. जितेन्द्र शंकर बजाड़, भींचोर-312022 (चित्तौड़गढ़) 22. अशोक कुमार दवे, विकास सहायक; राजस्थान स्टेट भारत स्काउट व गाइड स्टेट मुख्यालय, ज. लाल नेहरू मार्ग, बजाज नगर, जयपुर 23. प्रकाश तातेड़, नवनीत, नई आबादी, काकरोली, उदयपुर 24. दीनदयाल शर्मा, 7/101 आर एच बी , हनुमानगढ़ टाउन, गगानगर 25. नदलाल परसरामाणी, रा मा. वि , गुड़ा (उदयपुर) 26. बाबूसिंह जैन, रा. मा. वि., रटलाई (झालावाड़) 27. जगदीश सुदामा, श्रीकृष्ण निकुंज, भट्टियानी चोहट्टा, उदयपुर 28. उषा पालीवाल, राज. बालिका मा. वि., अमरसर, जयपुर 29 अमृतसिंह पंवार, रा. मा. वि., आगोलाई, जोधपुर 30. रविदत्त पालीवाल, नाहरसिंह बुर्ज,

मानगा गेट, नवलगढ़-333042 (झुंझनूं) 31. मोतीलाल पाटीदार, राउ. उ मा. वि., धनकोड़ा (डूंगरपुर) 32 हरेन्द्र कुमार त्यागी, इन्दोनिया पब्लिक स्कूल, नवलगढ़-333042 (झुंझनू) 33 मुख्तार टोंकी, काली पल्टन, पुल मो. था, टोंक (राज) 34 अरुणी रावट्रंत, पोस्ट ऑफिस रोड, भीमगंज मंडी, कोटा 35 उषा किरण जैन, अतिशय क्षेत्र बाड़ा-पदमपुरा, जयपुर 36. शिशुपालसिंह 'नारसा', सहायक परियोजना अधिकारी (वरिष्ठ) प्रौढ़ शिक्षा, सीकर (राज) 37. रजनी कुलश्रेष्ठ, 49 सुभाष नगर, उदयपुर 38. हनुमान दीक्षित, रा उ प्रा.वि नम्बर-1, नोहर (गगानगर) 39 कुन्दनसिंह सजल, उदय निवास, रायपुर (पाटन), जि सीकर 40 घनश्याम गुप्तवाल, रीडर, व्यावसायिक शिक्षा, एस. आई. ई आर. टी, सहेली मार्ग, उदयपुर 41. माधव नागदा, रा. सी उ. मा, वि, राजसमन्द-313326 (राज) 42 जगदीश प्रसाद सैनी, प्रधा., रा.मा वि, प्रीतमपुरी (सीकर) 43. अरविन्द चूरूवी, रा. उ मा. वि, रतन नगर, (चूरू) 44. पुष्पलता कश्यप, पुष्पांजलि भवन, पुराने जे सी ओ. मैस के पीछे, लक्ष्मीनगर, जोधपुर 45 जयपालसिंह राठौ, रा. मा. वि, गुडा (बाड़मेर) 46. महेन्द्र, आचार्य रा. प्रा. वि., बदरासर (बीकानेर) 47. गणेश तारे, एलबर्ट आइंस्टाइन सेकेंड्री स्कूल, सिटी पैलेस, कोटा 48. योगेन्द्रसिंह भाटी 'पोसी', 272 आदर्श कॉलोनी, निम्बाहेड़ा (चित्तौड़गढ़) 49. ब्रजभूषण भट्ट, रा. सी. उ मा. वि, हरमाड़ा (अजमेर) 50 करणीदान बारहठ, फेफाना, (गंगानगर) 51. रमेशचन्द्र पारीक, केन्द्रीय विद्यालय न० 1. मोतीडूंगरी, अलवर 52. गिरवर प्रसाद बिस्सा, द्वारा श्री भंवरलाल आचार्य, सादाणियों की गली, मोहता चौक, बीकानेर 53. दिनेशचन्द्र श्रीमाल, रा. महा. उ. मा. वि, डूंगरपुर, (राज.) 54. अशोककुमार व्यास, किले के ऊपर, व्यासपाड़ा, जैसलमेर 55. महेन्द्र यादव, ग्रा० पो० माजरीकाला, अलवर 56. पारसचन्द जैन, ग्रा. पो. कुशायता बाया-सावर, अजमेर 57 उषारानी दवे, रा. बा. मा. वि. राजनगर, (उदयपुर) 58. रामेश्वर लाल गर्ग, 'तूफान' व.अ. रा. मा वि, भट्टों का बामनिया (चित्तौड़) 59. राधेश्याम शर्मा, आंवली कला, झालावाड़ 60 गौरीशंकर आर्य, कवि कुटीर, चौमहला-326315 (झालावाड़) 61. भंवरलाल प्रभाकर, रा. उ. प्रा. वि., सदीनसर, (सीकर) 62. राधेश्याम सरावगी, चारभुजा-313333, (उदयपुर) 63. इस्हाक आलम, शेखों का मोहल्ला, सिरोही-307001 64. भरतसिंह ओला 'भरत', रा. प्रा. वि., परलीका त. नोहर (श्रीगंगानगर)।

□